माधव हाड़ा से विशेष बातचीत...

हिंदी समाज अपने वर्तमान पर एकाग्र और उससे अभिभूत

उदयपुर विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के आचार्य और अध्यक्ष प्रो माधव हाड़ा की शुरुआती पहचान कविता के गंभीर आलोचक की बनी थी। 'तनी हुई रस्सी पर' तथा 'कविता का पूरा दृश्य' जैसी आलोचना पुस्तकों के साथ उन्होंने राजस्थान के अनेक महत्वपूर्ण कवियों पर निबंध लिखे थे। बीच में मीडिया पर दो पुस्तकों के बाद उनकी दिलचस्पी मध्यकालीन साहित्य तथा प्राच्य विद्वानों में हुई है। मीरा के जीवन पर गहरे शोध विश्लेषण पर लिखी उनकी किताब 'पचरंग चोला पहन सखी री' के बाद हाल ही में उन्होंने प्राच्यविद्या के मनीषी विद्वान मुनि जिनविजय पर साहित्य अकादमी के लिए निबंध लिखा है। आलोचना परिदृश्य में समकालीन साहित्य के वर्चस्व और लोकप्रियतावाद के संबंध में पल्लव की बातचीत के मुख्य अंश...

प्रश्न 1 ... आपने मीरा जैसी मध्यकालीन कवयित्री के जीवन पर परिश्रमपूर्वक किताब लिखी और अब पुरातत्वविद मुनि जिन विजय पर। यह अतीतगामी दृष्टि है या भूल का प्रायश्चित?

अपने वर्तमान की समझ के लिए अतीत की मुकम्मल पहचान जरूरी है। हम अतीतगामी होने की बुराई तो अकसर करते हैं, लेकिन विडंबना है कि मौजूदा समाज की अधिकांश मुश्किलों की जड़ें अतीत में है। अतीत को उलट-पलट कर देखते रहना चाहिए, क्योंकि इसकी कोई पहचान अंतिम नहीं होती। मीरा की जो जो पहचान अतीत में बनी, वो आधी-अधूरी थी। उसकी यह पहचान बनाने वाले राजपूताना के पॉलिटिकल एजेंट लेफ्टिनेन्ट कर्नल जेम्स टॉड, रामचंद्र शुक्ल आदि के अपने आग्रह थे। उनके समय में उपलब्ध सामग्री और स्रोत भी सीमित थे। पचरंग चोला पहन सखी री में आग्रह-आसक्ति से अलग देशभाषा स्रोतों के आधार मीरा की नई पहचान बनाने का प्रयास है। इसकी मीरा 'यह-वह' या 'इसकी-उसकी' मीरा से अलग है। यह भक्त, संत, रहस्यवादी कवयित्री, विद्रोही से पहले एक मनुष्य है।

प्रश्न 2 ... हिन्दी आलोचना इधर बेहद समकालीन हो गई है। स्थिति यह कि समान्तर कहानी और नई कहानी जैसे अभी हाल के आंदोलनों पर भी भूले-भटके बात नहीं होती। इस स्थिति को क्या कहेंगे?

हिंदी आलोचना ही क्यों, पूरा हिंदी समाज केवल अपने वर्तमान पर एकाग्र और उससे अभिभूत समाज है। शुरुआत में हिंदी में शोध और आलोचना को गंभीर अनुशासन में ढालने के प्रयास हुए, लेकिन कुछ दूर चलकर यह काम रुक गया। आलोचना की जगह समीक्षा आकर बैठ गई। अब सब ओर समीक्षा संस्कृति का बोलबाला है। अब तो आज लिखा और आज ही उसके मूल्यांकन की अपेक्षा है। हड़बड़ी और जल्दबाजी में समीक्षाएं हो रही हैं। तत्काल समीक्षा का महत्व है, लेकिन हिंदी में समीक्षा ने आलोचना को विस्थापित कर दिया है। हिंदी भाषा और साहित्य की बुनियाद रखने वालों का नए लोग नाम तक नहीं जानते।

प्रश्न 3 ... क्या आलोचना भी लोकप्रियतावाद के घेरे में कैद हो रही है? जीवितों पर लिखने का आकर्षण तात्कालिक लाभ तो नहीं?

यह सही है। हिंदी आलोचना में फिलहाल तत्काल पहचान के लिए आग्रही लोगों की भीड़-भाड़ है। आलोचना में अपने समकालीनों पर लिखने का चलन हावी है। इसमें भी 'मैं तुझ पर' और 'तू मुझ पर' का रिवाज बढ़ गया है। पत्रिकाएं कई निकल रही है, लेकिन ये सब इस 'तेरे-मेरे' की मुहिम में शामिल हैं। शोध की स्थिति और भी खराब है। यह अधिकांश जीवित लोगों पर एकाग्र है। अभी-अभी या ताजा लिखे पर हुए काम पर शोध की उपाधियां दी जा रही हैं। अहिंदी भाषी क्षेत्रों में होने वाला हिंदी शोध कार्य तो पूरी तरह आज या अभी पर ठहरा हुआ है। आज या अभी पर हुए शोध या आलोचना से साहित्य की कोई ठीक पहचान नहीं बनती। समय साहित्य की पहचान और मूल्यांकन की सबसे बड़ी और निर्मम कसौटी है। उस पर खरा-खोटा सिद्ध होने का धैर्य इधर की रचना और आलोचना, दोनों में नहीं है।

प्रश्न 4 ... परंपरा के मूल्यांकन के लिए मौजूदा हिन्दी आलोचना के समक्ष आप क्या चुनौतियां देखते हैं? कहां कमी देखते हैं आप?

विगत के मूल्यांकन की शुरुआत अच्छी हुई। भारतीय साहित्य की पहचान और पुनरुत्थान के लिए महात्मा गांधी, रवीन्द्रनाथ टैगोर आदि की प्रेरणा से के.एम. मुंशी, राहुल सांकृत्यायन, सुखलाल सिंघवी, शिवलाल अग्रवाल, धर्मानंद कोसांबी, विधुशेखर शास्त्री, हजारीप्रसाद द्विवेदी, परशुराम चतुर्वेदी आदि सक्रिय हुए। राजस्थान में मुंशी देवीप्रसाद, हरिनारायण पुरोहित, नरोत्तम स्वामी, गौरीशंकर हीराचंद ओझा, मोतीलाल मेनारिया आदि ने बहुत काम किया। अब इस दिशा में काम नहीं हो रहा है। अज्ञेय ने कभी कहा था, परंपरा यात्रा में पोटली बंधे पाथेय की तरह है। इसकी निरंतर खोज-खबर और सार-संभाल होती रहनी चाहिए। परंपरा के नाम पर हिंदी में रामचंद्र शुक्ल थे। यह कुछ हद तक बासी हो गया है, लेकिन इसे उलट-पलट देखने का धैर्य हिंदी के नए लोगों में नहीं है।